2022 विधानसभा चुनाव : परिदृश्य और फलितार्थ

प्रेम सिंह

(1)

पांच राज्यों में 10 फरवरी से 7 मार्च 2022 तक होने वाले विधानसभा चुनावों का सत्ता की राजनीति और विचारधारा की राजनीति दोनों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। राजनीतिक पार्टियों, जनसंचार माध्यमों और नागरिक विमर्श में इन चुनावों के सत्ता की राजनीति पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा ही ज्यादा हो रही है। नवउदारवादी आर्थिक नीतियों के स्वीकार और परवान चढ़ने के साथ भारत के राजनीतिक और बौद्धिक मंच पर जो 'ज्ञान-कांड' उपस्थित हुआ है, उसमें विचारधारा की राजनीति के स्रोतों और प्रेरणाओं को लगभग ग्रहण लग गया है। किसी भी देश में विचारधारा की राजनीति की प्राथमिक कसौटी वहां का संविधान होता है। राजनीति में हिस्सेदार वामपंथी, दक्षिणपंथी या मध्यमार्गी राजनीतिक दलों की विचारधाराओं को संविधान की विचारधारा को आगे विकसित और मजबूत करके अपनी वैधता और सार्थकता हासिल करनी होती है। संविधान की कला में निष्णात नेता और कानून-निर्माता ही यह काम कर सकते हैं।

भारत में अब ऐसा नहीं है। इसका प्रमाण संसद और विधानसभाओं में बनाए जाने वाले कानूनों और नीतियों में; तथा कानून एवं नीति-निर्माताओं को संसद और विधानसभाओं में पहुंचाने वाले चुनावों के विमर्श में स्पष्ट देखा जा सकता है। पांच राज्यों के चुनावों में किसी भी दल ने भयावह आर्थिक विषमता और बेरोजगारी के बावजूद नवउदारवादी नीतियों की समीक्षा करने तक की बात नहीं कही है। जबकि सभी दलों के घोषणापत्र जारी हो चुके हैं। चुनाव संबंधी किसी रिपोर्ट, विश्लेषण और लेख में भी अभी तक इस परिप्रेक्ष्य से विचार नहीं किया गया है। मतदाताओं की जो प्रतिक्रियाएं अखबारों में पढ़ने और टीवी पर सुनने को मिली हैं, उनमें भी बेरोजगारी, महंगाई, आर्थिक गैर-बराबरी, विकास, भ्रष्टाचार आदि की चर्चा/शिकायत नवउदारवादी नीतियों के मद्देनजर नहीं की गई है। पांच राज्यों के ये चुनाव भी इस तथ्य की समवेत गवाही हैं कि नए अथवा निगम-भारत का निर्माण संविधान की विचारधारा के ऊपर थोपी गई नवउदारवादी विचारधारा को तेजी से आगे बढ़ाने/मजबूत बनाने से होगा। इस तरह, नए भारत के साथ उभरता कॉरपोरेट सामंतवाद आने वाले लंबे समय तक टिका रहेगा। इन चुनावों का विचारधारा की राजनीति पर यही प्रभाव है, जिसे समझने के लिए चुनाव-परिणामों का इंतज़ार करने की जरूरत नहीं है।

सत्ता की राजनीति के कुछ सामान्य विशेषताएं आसानी से चिह्नित की जा सकती हैं : यह राजनीति कमोबेश सांप्रदायिक और जातीय गोलबंदी के आधार पर चलती है; चुनावों पर भारी धन-राशि खर्च की जाती है जो कारपोरेट फंडिंग और पार्टियों/नेताओं द्वारा राजनीतिक सत्ता के जरिए संग्रहित की गई दौलत से आती है; सभी पार्टियों में छोटे-बड़े पैमाने पर दल-बदल होते हैं; सभी नेता लोक-लुभावन नारों और वादों की बौछार करते हैं; कौन क्या मुफ़्त दे सकता है, इसकी होड़ मचती है; पार्टियों/नेताओं के बीच परस्पर ओछेपन की हद तक आरोप-प्रत्यारोप लगाए जाते हैं; सत्तारूढ़ दल पूरी निर्लज्जता से सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग करते हैं इत्यादि। ये चुनाव भी इस सबका अपवाद नहीं हैं। इन चुनावों के सत्ता की राजनीति पर पड़ने वाले प्रभावों की फ़ेहरिस्त काफी लंबी है, जो इस साल जुलाई में होने वाले राष्ट्रपति पद के चुनाव से लेकर 2024 में होने वाले लोकसभा चुनावों तक फैली है। उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव को 2024 के लोकसभा चुनाव का सेमी फाइनल बताया गया है। यहां के परिणाम विपक्ष की राजनीति को तो प्रभावित करेंगे ही, राज्य के मुख्यमंत्री आदित्यनाथ योगी, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और गृहमंत्री अमित शाह के राजनीतिक भविष्य पर गहरा प्रभाव डालेंगे। इसीलिए तीनों ने यूपी चुनाव जीतने के लिए पूरी ताकत झोंक दी है।

सत्तारूढ़ भाजपा सांप्रदायिकता की टेक लेकर चुनाव अभियान में उतरी है। निराशा-जनित उत्तेजना से ग्रस्त भाजपा नेतृत्व का चुनाव अभियान नफरत की राजनीति के रास्ते खुले-आम बहुसंख्यक वोटों के ध्रुवीकरण का अभियान है। सांप्रदायिकता की तेज रफ्तार गाड़ी के पीछे उसने विकास का छकड़ा भी बांधा हुआ है। नफरत की राजनीति की झोंक में उसने यूपी के मुकाबले में कुछ राज्यों को लांछित कर एक ओर विकास के अपने दावों को कटघरे में खड़ा कर दिया, दूसरी ओर राष्ट्रीय अखंडता पर ही प्रहार कर डाला। सांप्रदायिकता और विकास के घालमेल के साथ उसने यूपी की पिछली सरकार के शासन-काल को 'गुंडाराज' प्रचारित करने की मुहिम छेड़ी हुई है। भले ही राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़े यूपी में बढ़ते अपराधों की सच्चाई बयान करते हों, और केंद्र सरकार में गृहराज्य मंत्री के बेटे पर सरेआम चार किसानों को अपनी गाड़ी के नीचे कुचल कर मार देने का आरोप हो, भाजपा योगी-राज को कानून-व्यवस्था का स्वर्ग प्रचारित करने में लगी है। कबीर अगर नए भारत में आएं तो पाएंगे कि यहां उलटबासियों के लिए भरपूर सामग्री है। उनके अचंभे की सीमा नहीं रहेगी जब वे देखेंगे कि नरेंद्र मोदी, अमित शाह और आदित्यनाथ योगी विपक्ष, खासकर सपा नेताओं को दंगाई और गुंडे-माफिया बता रहे हैं!

भाजपा ने चुनाव जीतने के लिए कुछ पेशबंदी भी की हैं। महंगाई को लेकर आरएसएस/भाजपा की मीडिया मशीनरी ने यह 'नवीन तर्क' फैलाया हुआ है कि नए भारत के निर्माण में महंगाई की मार झेलना राष्ट्र-भक्ति है। महंगाई का असर किसी भी चुनाव में उसके वोटों पर न पड़े, इसके लिए भाजपा ने यह स्थायी पेशबंदी की है। यूपी चुनाव को सात चरणों में फैलाना भी पेशबंदी का एक अंग है। वह भी इस तरह कि मुजफ्फरपुर-कैराना में मतदान के एक दिन पहले सहारनपुर में भाषण किया जा सके। पहले दो चरणों के चुनाव से पता चलता है कि मतदाता सूची से बड़ी संख्या में लोगों के नाम काटने और पोस्टल बैलट का दुरुपयोग करने जैसी खबरें निराधार नहीं थीं। लोगों को आशंका है कि मतों की गणना के वक्त सरकार सत्ता का दुरुपयोग कर धांधली कर सकती है।

पश्चिम यूपी में भाजपा के सामने विपक्ष की कड़ी चुनौती है। किसान आंदोलन का ज्यादा प्रभाव प्रदेश के पश्चिमी और तराई इलाके में है। लेकिन सेंट्रल और पूर्वी यूपी के किसान भी आंदोलन और उसकी जीत से अप्रभावित नहीं रहे है। किसान एक बड़े समूह के रूप में भाजपा से खफा हुए हैं। इसका चुनावी नुकसान भाजपा को हुआ है, इसके स्पष्ट संकेत पहले तथा दूसरे चरण के चुनावों से मिलते हैं। यह स्पष्ट हो गया है कि लोगों ने सांप्रदायिक वैमनस्य के ऊपर भाईचारे और विकास की हवाई बातों के ऊपर ठोस मुद्दों को तरजीह दी है। कोरोना महामारी से हुई तबाही भी यूपी में एक महत्वपूर्ण कारक है। प्रधानमंत्री ने भले ही तबाही का ठीकरा विपक्ष के सिर फोड़ने की कोशिश की है, लेकिन प्रियजन और रोजगार खोने वाले भुक्तभोगियों को बहलाना आसान नहीं है। सरकारी नौकरियों के लिए यहां से वहां धक्के और पुलिस के डंडे खाने वाले युवक-युवतियां सरकार से खफा हैं। उन्हें विकास की तोता-रटंत - जैसे एक्सप्रेसवे, अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे, स्मार्ट-सिटी, मेगा-सिटी, सौंदर्यीकृत तीर्थ-स्थल, और, यहां तक कि भव्य राम मंदिर का निर्माण आदि - से हमेशा के लिए बहलाए नहीं रखा जा सकता। भाजपा की पेशबंदी के बावजूद छोटा-मोटा स्थायी-अस्थायी काम करने वाले निम्न और निम्न मध्य-वर्ग के लोगों से लेकर दिहाड़ी मजदूरों तक महंगाई निश्चित ही एक मुद्दा है।

यूपी में विपक्षी दायरे में सपा-आरएलडी और कुछ अन्य छोटी पार्टियों का गठबंधन बसपा और कांग्रेस से ज्यादा मजबूत स्थिति में है। ज्यादातर अल्पसंख्यक मतदाताओं का झुकाव सपा-आरएलडी गठबंधन की तरफ है। काफी संख्या में पिछड़े मतदाता भाजपा को छोड़ कर सपा से जुड़े हैं। तभी नरेंद्र मोदी और अमित शाह का हमला सबसे ज्यादा गठबंधन की बड़ी पार्टी सपा पर है। बसपा के पक्ष में दलित मतदाता एकजुट बताए जाते हैं। लेकिन मायावती की अवसरवादी, धनवादी और भाजपापरस्त राजनीति ने दलित आंदोलन की राजनीतिक ताकत को बहुत हद तक नष्ट कर दिया है। लिहाजा, दलित वोटों में बिखराव नजर आता है। इस चुनाव में ज्यादातर दलित मतदाता निश्चित ही बसपा के साथ खड़े दिखते हैं। लेकिन जिनका बसपा से मोहभंग हो चुका है, वे भाजपा और गठबंधन के साथ है। सतीश मिश्रा के दावे, कि एक बार फिर दलित-ब्राहमण एका से बसपा की सरकार बनेगी, को लोगों ने शायद ही गंभीरता से लिया हो। कांग्रेस ने चुनाव के समय महिला मतदाताओं का आधार खड़ा करने की जो रणनीति अपनाई, उसका इस चुनाव में कोई बड़ा फायदा होने की उम्मीद नहीं है।

अलबत्ता, विपक्ष के वोटों के बिखराव का फायदा भाजपा को मिलेगा। इसके अलावा भाजपा के पास एक संसक्त मजबूत काडर है। राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबंधन (एनडीए) में आवा-जाही करते रहने वाले दलों के कार्यकर्ताओं के साथ भी आरएसएस/भाजपा के कार्यकर्ता नजदीकी संपर्क और संबंध बना लेते हैं। हर चुनाव मीडिया में भी लड़ा जाता है जिसमें सोशल मीडिया शामिल है। मुख्यधारा मीडिया और सोशल मीडिया दोनों के इस्तेमाल में भाजपा अन्य दलों के मुकाबले बहुत आगे है। सपा-आरएलडी जैसे दलों की तरफ से मीडिया में जो प्रवक्ता पेश होते हैं, वे ज्यादातर चुनावी यानि चुनाव के समय प्रकट होने वाले होते हैं। पार्टी के संगठनात्मक ढांचे और नीतियों/विचारधारा से उनकी पहचान नहीं जुड़ी होती। जबकि भाजपा के पास स्थायी प्रवक्ताओं की पूरी शृंखला होती है। साथ ही, आरएसएस/भाजपा समर्थक 'राजनीतिक विश्लेषकों' की भी पूरी फौज चैनलों पर मौजूद होती है।

(3)

उत्तराखंड में भाजपा सरकार के खिलाफ सत्ता-विरोधी लहर और अस्थिरता कांग्रेस के पक्ष में प्रमुख कारक माने गए। हालांकि, यह भी सामने आया कि कांग्रेस का चुनावी प्रबंधन अपेक्षाकृत कमजोर था। 2017 के चुनाव में कुल 70 सीटों में से भाजपा को 65 और कांग्रेस को 5 सीटें मिली थीं। अगर यह भी माना जाए कि भाजपा और कांग्रेस में इस बार कांटे की लड़ाई है, तब भी कांग्रेस के लिए इतने बड़े अंतर को पार कर पाना आसान नहीं होगा। पंजाब में कांग्रेस को सत्ता-विरोधी लहर और अंदरूनी झगड़े का सामना करना पड़ा है। किसान आंदोलन के समर्थन का फायदा पंजाब में सबसे ज्यादा कांग्रेस को हो सकता था। लेकिन पिछले दिनों नेतृत्व-परिवर्तन के दौरान पैदा हुई कटुता, वरिष्ठ नेता कैप्टन अमरिंदर सिंह का भाजपा के साथ गठबंधन, किसान संगठनों की नई पार्टी द्वारा सभी सीटों पर उम्मीदवार उतारना, संयुक्त किसान मोर्चा (एसकेएम) में बैठे आम आदमी पार्टी समर्थकों का पंजाब में आप का समर्थन, और रेडिकल तत्वों की आप के साथ एकजुटता जैसी घटनाओं/परिस्थितियों ने वह फायदा कांग्रेस से छीन लिया लगता है।

भाजपा इस स्थिति का फायदा उठाना चाहती है। इसीलिए 'रंगीले' बाबा रामरहीम को फरलो पर जेल से छोड़ा गया। लोगों का कहना है कि उन्हें इसीलिए छोड़ा गया है कि वे अपने अनुयायियों को पंजाब लोक कांग्रेस-भाजपा गठबंधन को वोट देने का निर्देश दें। साथ ही प्रधानमंत्री के तीन चुनावी दौरे आयोजित किए गए और उन्होंने कांग्रेस को जम कर कोसा। लगे हाथ भाजपा अध्यक्ष जेपी नड्डा ने पंजाब के सिखों को 1984 के दंगों की याद भी बखूबी दिला दी। एक समय मैंने सोचा था कि फौजी रहे कैप्टन की राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रवाद की समझ आरएसएस/भाजपा से अलग है। लेकिन वे देश और समाज के टुकड़े करने पर आमादा ताकतों के साथ खड़े होकर पंजाब की सुरक्षा का मंत्र जप रहे हैं।

कहने की जरूरत नहीं कि सीमावर्ती राज्य होने के चलते राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ-साथ पंजाब आंतरिक शांति के लिहाज से भी एक अत्यंत संवेदनशील राज्य है। उसने लंबे समय तक उग्रवाद का दंश झेला है। देश-विदेश में अभी तक विभाजनकारी तत्व सक्रिय हैं, इसकी पुष्टि समय-समय पर होने वाली घटनाओं और गिरफ्तारियों से होती है। सीमावर्ती राज्य के रूप राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए पंजाब का महत्व तभी है जब वहां मुकम्मल आंतरिक शांति हो। लेकिन इस चुनाव में वोटों के लिए जिस गैर-जिम्मेदाराना तरीके से नेता राष्ट्रीय सुरक्षा और पंजाब की आंतरिक शांति के सवाल को गड्ड-मड्ड कर रहे हैं वह चिंताजनक है। पंजाब और विदेशों में रहने वाले रेडिकल तत्वों के साथ गठजोड़ करने वाले केजरीवाल और उनके समर्थक सत्ता की हविस में पंजाब की आंतरिक शांति के साथ खतरनाक खेल खेल रहे हैं। मैंने पहले भी यह कहा है, और प्रेस में भी इस तरह की खबरें आती रही हैं कि शुरू से ही विदेशों में बसे रेडिकल तत्वों ने पंजाब में अकाली दल/कांग्रेस नीत परंपरागत राजनीतिक सत्ता-संरचना को तोड़ने के लिए आप को हथियार बनाया हुआ है।

पंजाब में जिस 'परिवर्तन' और 'विकल्प' का हल्ला आप और उसके समर्थक कर रहे हैं, उसकी स्पष्ट दिशा एक सांप्रदायिक दक्षिणपंथी राजनीति की ओर है। कारपोरेट राजनीति की परिधि में केंद्र में जैसे 'नरेंद्र मोदी बनाम पिछले 70 साल' अभियान धड़ल्ले से चल रहा है, उसी तरह पंजाब में 'केजरीवाल बनाम पिछले 70 साल' की मुहिम देखी जा सकती है। 2014 में चलाई गई 'देश में नरेंद्र मोदी, दिल्ली में केजरीवाल' की मुहिम लोग भूले नहीं होंगे। पंजाब की कोख से उपजे किसान आंदोलन से कारपोरेट-परस्त राजनीति के खिलाफ जो मजबूत आवाज उठी थी, पंजाब में ही उस पर मिट्टी पड़ गई लगती है। किसान आंदोलन ही पंजाब में बेरोजगारी से लेकर नशा और बेअदबी जैसी असाध्य लगाने वाली बीमारियों के समुचित और स्थायी इलाज का आधार हो सकता था। पता नहीं एसकेएम नेतृत्व और उसके कार्यकर्ताओं को इस क्षति का अहसास है या नहीं!

चरणजीत सिंह चन्नी को एक समझौता उम्मीदवार के रूप में पंजाब का पहला दलित मुख्यमंत्री बनाया गया था। कांग्रेस ने, भले देरी से, दलित वोटों को अपने पाले में करने की कोशिश के तहत चन्नी को मुख्यमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया। हालांकि, चन्नी के उत्थान के पीछे शिक्षा व सेवा-क्षेत्र में मिले अवसर तथा विदेश जाकर की जाने वाली कमाई से हुए दलित समाज के सशक्तिकरण की परिघटना की भी भूमिका है। पंजाब में सबसे अधिक दलित वोट हैं, लेकिन उस मोर्चे पर कांग्रेस की आप, अकाली दल-बसपा गठबंधन, संयुक्त समाज मोर्चा, सीपीआई-सीपीएम से टक्कर है। आप पंजाब में किसान आंदोलन के प्रभाव के बिखर जाने, कांग्रेस के खिलाफ सत्ता-विरोधी लहर और पार्टी की अंतर्कलह का फायदा आप उठाने में लगी थी। 'ईमानदार' और 'सदाचारी' केजरीवाल ने चन्नी की छवि मलिन करने के मकसद से उन पर बेईमान और भ्रष्टाचारी होने के आरोप लगाए। आप को यह भी विश्वास था कि शहरी हिंदू वोट उसे बड़ी मात्रा में मिलेगा। लेकिन भाजपा के अचानक सक्रिय हो जाने से उसका गणित गड़बड़ा सकता है। आरोप-प्रत्यारोपों से भरे इस चुनाव में एक बात सभी पार्टियों/नेताओं में समान है - सभी सिख गुरुओं की दुहाई दे रहे हैं, और गुरुद्वारों में गुरुओं के आशीर्वाद के लिए मत्था रगड़ रहे हैं। इस बीच पड़ने वाली संत रविदास जयंती का चुनावी फायदा उठाने की कवायद पंजाब से लेकर यूपी में वाराणसी और दिल्ली तक देखने को मिली। बहरहाल, 20 फरवरी को होने वाले पंजाब विधानसभा चुनावों में बहुकोणीय मुकाबले में त्रिशंकु विधानसभा की संभावना बन रही है; और वहां राष्ट्रपति-शासन भी लागू किया जा सकता है।

(4)

2017 के विधानसभा चुनावों में गोवा और मणिपुर में कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी बन कर उभरी थी। कांग्रेस के केंद्रीय पर्यवेक्षकों ने दोनों जगह अपनी भूमिका गंभीरता से नहीं निभाई। लिहाजा, दोनों राज्यों में भाजपा ने अपनी सरकार बना ली। पिछले चुनाव से लेकर इस चुनाव तक इन दोनों प्रदेशों की राजनीति दल-बदल का दलदल बनी हुई है। गोवा में कांग्रेस का गोवा फॉरवर्ड पार्टी के साथ गठबंधन है। पूर्व मुख्यमंत्री दिवंगत मनोहर पर्रिकर के बेटे उत्पल पर्रिकर ने भाजपा से अलग होकर अपने पिता की सीट पणजी से निर्दलीय चुनाव लड़ा है। गोवा में कलह-ग्रस्त भाजपा के लोग ही कह रहे हैं - 'भाजपा को बचाना है तो भाजपा को हराना है'। फिर से, कम से कम सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरने के लिए आशान्वित लेकिन दल-बदल से त्रस्त कांग्रेस ने अपने उम्मीदवारों को मंदिर, चर्च और मस्जिद में शपथ दिलवाई! 40 विधानसभा सीटों और 11,64,522 मतदाताओं वाले सबसे छोटे राज्य गोवा में कांग्रेस और भाजपा के अलावा टीमसी-एमजीपी गठबंधन, शिवसेना-एनसीपी गठबंधन, आम आदमी पार्टी भी चुनाव मैदान में हैं।

चुनाव अभियान के दौरान ठीक ही कहा गया कि गोवा में पार्टियां/नेता मुखर और मतदाता मौन रहे। इतनी पार्टियों/नेताओं और अभी तक के सबसे ज्यादा 301 प्रत्याशियों के शोर-शराबे के बीच मतदाताओं का विभ्रांत होना स्वभाविक था। अग्रेजों से देश की आजादी का विरोध करने वाले आरएसएस से आने वाले प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने यहां गजब का नुक्ता निकाला कि नेहरू ने 15 साल तक गोवा की आजादी नहीं होने दी! गोवा के मतदाताओं को पहली बार चुनावों में अच्छा-खासा सांप्रदायिक रंग भी देखने को मिला। चुनावों में करीब 79 प्रतिशत मतदान, जो पिछले चुनाव से मामूली-सा कम है, बताता है कि मतदाता चुप थे, निष्क्रिय नहीं। बहुकोणीय मुकाबले वाले गोवा विधानसभा चुनाव के नतीजों का पूर्वानुमान करना सबसे कठिन है। मणिपुर में भाजपा का किसी पार्टी के साथ चुनाव-पूर्व गठबंधन नहीं है। कांग्रेस का सीपीआई, सीपीएम, फॉरवर्ड ब्लॉक, आरएसपी, जेडी (एस) के साथ गठबंधन है। मणिपुर में कांग्रेस की स्थिति पहले की तरह भाजपा के मुकाबले मजबूत बताई जाती है।

(5)

ममता बनर्जी सपा-आरएलडी गठबंधन के समर्थन में लखनऊ आई थीं। सत्ता की राजनीति के लिए यह एक महत्वपूर्ण संकेत है। यूपी में भाजपा की सीटें साधारण बहुमत से घटती हैं, और जोड़-तोड़ से सरकार बनाने की कवायद में सपा-आरएलडी गठबंधन के विधायक टूट कर नहीं जाते हैं, तो 2024 के लोकसभा चुनाव में ममता बनर्जी द्वारा प्रस्तावित कांग्रेस से अलग भाजपा-विरोधी मोर्चे की संभावना को बल मिलेगा। अगर सपा-आरएलडी गठबंधन सरकार बना लेता है, तो मोर्चे के गठन की दिशा में खासी तेजी आ सकती है। अगर कांग्रेस उत्तराखंड, गोवा और मणिपुर में सरकार नहीं बना पाती है, और पंजाब में भी उसका प्रदर्शन अच्छा नहीं रहता है, तो विपक्ष के कांग्रेस-रहित मोर्चे की मजबूती को रोकना उसके लिए मुश्किल होगा। क्योंकि वैसी स्थिति में आरजेडी, एनसीपी, शिवसेना, वामपंथी पार्टियां भी कांग्रेस-रहित भाजपा-विरोधी मोर्चा बनाने के लिए तैयार हो सकते हैं। कांग्रेस अगर उत्तराखंड, गोवा और मणिपुर में सरकार बना लेती है, और पंजाब में अच्छा प्रदर्शन करती है, तो विपक्ष की राजनीति में उसकी स्थिति मजबूत होगी। लेकिन अगर यूपी में भाजपा की पूर्ण बहुमत सरकार बनती है, तो 2024 के चुनावों में कांग्रेस की स्थिति बेहद कमजोर हो जाएगी। इसके अलावा राजस्थान, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, कर्नाटक जैसे राज्यों में, जहां कांग्रेस की भाजपा से सीधी टक्कर रहती है, भाजपा कांग्रेस को कड़ी चुनौती देगी।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के फ़ेलो हैं*)